सहजानंद शास्त्रमाला

सरल दार्शनिक प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)
http://sahjanandvarnishastra.org/

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सरल दार्शनिक प्रवचन

प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक :—
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।
(उ० प्र०)

द्वितीयसंस्करण 1100] १९६२ [न्योछावर २५ नये पैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सरल दार्शनिक प्रवचन

मेरा धर्म

श्री दिगम्बर जैन सभा शिमला द्वारा आयोजित सर्वधर्मसम्मेलन के अध्यक्षपदसे भाषण—

यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा ।
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ॥
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषं तम् ।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥१॥

उपस्थित धर्मबन्धुगण ! आज बड़े हर्षका विषय है जो शाश्वत सत्य सुख की चाहसे सर्वसमुदाय इस महत्वपूर्ण सर्वधर्मसम्मेलनमें उपस्थित है । इस सम्मेलनका विषय है "मेरा धर्म" ।

आप सब सज्जनोंने विविध धर्मसमितियोंसे आये हुए प्रवक्ताओंके भाषण सुने । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहां सभी वक्ता और श्रोतावोंके भाव एक यह ही हैं, जो अविनाशी पूर्ण सच्चा सुख प्राप्त हो, समस्त दुःखोंसे निवृत्ति हो । इस ही भावकी सिद्धिके विषयमें विस्तृत विचार विविध वक्ताओं द्वारा प्रकट हुए हैं ।

यह बात सर्वसम्मत है कि "एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः" अर्थात् धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो शरीर छूट जानेपर भी आत्मामें रहता हुआ साथ जाता है । धर्म वही है जिसके होते ही तत्काल शान्ति प्राप्त हो । धर्म शब्द ही इस बातको बतलाता है कि धर्म क्या है ? "यः जीवान् संसारदुःखतः

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उद्धृत्य उत्तमे सुखे धरति स धर्मः" जो जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुटाकर उत्तम सुखमें धरे वह धर्म है—यह तो है धर्मकी विशेषता। अब धर्मके स्वरूपपर दृष्टिपात कीजिये जिसके जाने बिना धर्मके नामपर सब कुछ कर डालनेपर भी केवल परिश्रम ही परिश्रम है, निष्फल है। धर्म कहते हैं "अर्थः आत्मनि यं स्वभावं धत्ते स धर्मः" पदार्थ अपनेमें जिस स्वभावको रखता हो वह उस पदार्थका धर्म है।

जैसे एक मोटा दृष्टान्त लीजिये—अग्निका स्वभाव उष्णता है, वह उष्णता अग्निका धर्म है, और गहराई पर जावें तो देखें पुद्गलका स्वभाव रूप रस गन्ध स्पर्श है तो यह चतुष्टय पुद्गलका धर्म है। अब अपने विषय पर आवें "मेरा धर्म" मेरा अर्थात् इस शरीर, विचार और वाणी, चेष्टासे भी अलग, मुझ आत्माका स्वभाव है ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो केवल शुद्धज्ञान हो, ज्ञानके साथ मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ न हों, क्योंकि यह सभी दोष कोई भी आत्माके स्वभाव नहीं हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि "मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभका विकार नहीं होना" अथवा "शुद्ध जानना बना रहना" धर्म है।

यह धर्म प्राणीमात्रका है। जिन प्राणियोंके मन है उनमें जिसमें जितनी योग्यता हो वह इस अपने धर्मका विकास कर लेता है। बैल, घोड़े, हाथी, बन्दर, कबूतर आदि भी धर्म धारण कर लेते हैं, फिर मनुष्य तो एक विशिष्ट मन वाला है। वह यदि धर्मको अपनाये तो धर्मात्मा बन सकता है और धर्मका विकास होते होते सभी अधर्मोंके पूर्णतया आत्मासे पृथक् होनेपर आत्मा शाश्वत सत्य सुखका भंडार उत्कृष्ट परम-आत्मा हो जाता है।

यह सब अपने ही हाथकी बात है, जिस बातको हम अपना समझें उसी रूप हम बन जाते हैं। यदि राग, द्वेष, मोह भावको अपने स्वभाव समझें तो हम रागी, द्वेषी, दुखी बने रहेंगे और यदि शुद्ध ज्ञानको ही अपना स्वभाव समझेंगे तो हम शुद्ध ज्ञाता दृष्टा बने रहेंगे। यही संसार और मोक्षका एक सर्वप्रथम रहस्य है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भव्यवृन्द ! अब यह विचार करना है कि ये द्वेषादि विकार कैसे आत्मासे दूर हों ? भाइयों ! इसका मूल उपाय सम्यग्ज्ञान है, अपना और जगत्का ठीक जैसा स्वरूप हो उस ही विश्वासके साथ वैसा ही उपयोग बनाना सम्यग्ज्ञान है। भ्रम और अज्ञान हमारे सब दुःखोंका कारण है। इसके हटनेसे प्रकट होता है "मेरा धर्म"। देखिये – यदि कोई धर्मी अपने कमरेमें कोमल शय्यापर अनेक सेवक, मित्रोंकी सेवा पाता हुआ सो रहा हो, उसे यदि ऐसा स्वप्न आये कि मैं परिवार सहित समुद्रमें नावसे जा रहा हूं और बीच समुद्रमें बड़ी भंवर उठे और नाव डूब रही हो तो उस सेठके दुःखका क्या ठिकाना ? भाइयों ! बताइये उसके इस दुःखसे मुक्त होनेका कोई उपाय है ? मित्र सेवक दुःख मेट सकते हैं क्या ? नहीं। उसका उपाय तो एक यही है कि वह जग जावे। इसी तरह हमारे दुःख मिटनेका यही उपाय है कि हम जग जावें, अर्थात् हमारे भ्रम दूर हों।

हमें मुख्य रूपसे ३ बातोंका यथार्थ विचार करना है—(१) दिखने वाला सर्वजगत्, (२) जानने वाले अन्य पदार्थ अर्थात् अन्य आत्माएं, (३) मैं स्वयं और मेरा स्वभाव।

(१) दिखने वाला यह जगत् अचेतन है, भौतिक है, अणुओंका पुञ्ज है। जैसा ये दिख रहा है ऐसा भी सही ध्रुव नहीं है। इनमें रहने वाले अणु-अणु स्वतन्त्रसत्ता वाले हैं, मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं, मेरे नहीं, न इनसे मेरा हित है। इसमें धन, मकान आदि तो प्रकट विराने हैं हो, परन्तु यह शरीर भी आगया जिसमें यह आत्मा रह रहा है।

(२) ये अन्य आत्माएं चाहे कोई किसी धर्मशालामें (शरीरमें) रहता हो या अन्यत्र, अत्यन्त भिन्न हैं। इन सबका सुख-दुःख, पुण्य-पाप, जन्म-मरण इन सबके साथ है, आपका आपके साथ है, कोई किसीको सुख-दुःख भी नहीं दे सकता और देखो भैया ! मोटी सी बात है परीक्षा करनी हो तो प्रतिकूल होकर देखलो ! यहां तो यह बात है कि जिसकी इच्छाकी, पूर्तिमें जो निमित्त होगया वह उसे प्यारा कहने लगता है। इस विषयमें विशेष कुछ नहीं कहना है, सभीके अनुभवमें यह बात है।

Version 1

(३) अब अपने विषयमें विचार करें कि मैं क्या हूँ, मैं दूसरोंके अनुभवोंसे पृथक् अनुभव वाला हूं, स्वतन्त्र हूं, मेरा स्वभाव ज्ञान है, उससे मैं कभी अलग नहीं होता। मेरा स्वभाव इच्छा, राग, द्वेष करने या पशु मनुष्यादि जन्मोंमें भटकनेका नहीं है, किन्तु कर्मोदय और बाह्य पदार्थोंके निमित्तसे मेरे अज्ञानके कारण ये दशायें होती हैं। मेरा स्वभाव तो जानने देखनेका है। मैं अपनेको यथार्थ देखूं तो जो मेरा स्वरूप है वह परमात्माका है, जो परमात्माका स्वरूप है सो मेरा है। केवल अन्तर यह हो गया है कि उनमें राग नहीं है, इसी कारण अनन्त ज्ञानी और अनन्त सुखी हैं; यहां रागका विस्तार है इसी लिये अल्पज्ञानी व अल्पसुखी हूं। यदि मेरे भी राग न हो तब परमात्माका और मेरा स्वरूप खुले रूपमें एक है। यह राग तभी नष्ट हो जावेगा जब यथार्थ ज्ञानके बलसे आशा दूर हो जावेगी।

मैं अकेला ही सुखी दुखी होता हूं और इस सुख दुःखका कारण और कोई नहीं है, केवल मेरा मोह राग द्वेष ही दुःखका कारण है। यदि मैं अपनेको समझूं और सबको भिन्न समझ जाऊं तथा सबका राग छोड़ कर मैं अपनेमें ही रम जाऊं तब दुःखका लेश भी नहीं रह सकता है। वास्तवमें इसी स्थिति वालेको तो ही परमात्मा कहते हैं। इस सहज ज्ञानानन्दमय स्वरूपको चाहे जिन, शिव, ईश्वर, बुद्ध, राम, विष्णु, हरि, हर, किसीके नामसे भी कहो यदि लक्ष्य सहज ज्ञानानन्दमय का है तब वह सत्य भक्ति है, मुक्तिका मार्ग है।

इसलिये भाइयों! हम सब एक ही जातिके हैं, एक ही ढङ्गके हैं। सुख शान्ति पानेके लिये यह ही ध्यान रखें कि हे अज्ञान राग द्वेष आदि अधर्मो! तुम दूर हटो और हे स्वाभाविक ज्ञानानन्दमय धर्म! तुम प्रकट हो।

बन्धुवर! "मेरा धर्म" समझनेके लिये बाह्य विज्ञानकी कसौटीसे भी अपनी तर्कणाओंको कसिये, वह कसौटी है स्याद्वाद। अभी अभी आपके समक्ष विविध प्रवक्ताओंने अपने अपने मन्तव्य व्यक्त किये। यहाँ कोई थियेटर तो है नहीं जो अपना अपना पार्ट अदा कर गये हों, यहां तो एक महत्वपूर्ण सर्वधर्म सम्मेलन हो रहा है। वे सभी प्रवक्ता अपने अपने ज्ञानकी हार्दिक बात बता गये हैं। यदि प्रत्येक प्रवक्ताके विचारोंको दृष्टियो द्वारा देखें तो आप सभी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह कह उठेंगे इसमें सभीने सत्य कहा, परन्तु इन्होंने इस दृष्टिसे और उन्होंने इस उस दृष्टिसे।

वस्तु अनेकधर्मात्मक है। इसीलिये वस्तुकापूर्ण स्वरूप जाना तो जा सकता है परन्तु कहा नहीं जा सकता। कहनेमें अंश आते हैं, जैसे एक मनुष्यको कोई पिता कहता है, कोई पुत्र कहता है, कोई मामा और कोई भानजा कहता है सबकी दृष्टि अलग है परन्तु यह सब रिश्ते उसमें हैं।

जैसे इस कागजको ही लीजिये—बतलाइये यह नित्य है या अनित्य? देखिये यह कागज इसी शक्लमें सदा नहीं रहेगा और न पहिले से था इसलिये अनित्य है, परन्तु जिन अणुओंने कागजकी शक्ल रखी है वे अणु, कागज जल जाये तब भी रहेंगे, वे कागजसे पहिले भी थे इसलिये नित्य है। तब यही सिद्ध हुआ ना, कि द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्याय (हालत) दृष्टिसे अनित्य है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तु तो अनेकान्त है और उसके जाननेका उपाय स्याद्वाद है।

स्याद्वादसे वस्तुका यथार्थस्वरूप जानकर, स्वभाव जानकर अपने स्वभाव रूप रहना "मेरा धर्म है"। जब जीव स्वभावरूप रहेगा तब उससे न हिंसा होगी, न वह बोलेगा, न चोरी करेगा, न कुशील करेगा, न परिग्रह जोड़ेगा अर्थात् ज्ञानी जीव पांच पापोंकी प्रवृत्ति नहीं करता।

सज्जनों! सारांश यही है कि धर्म वस्तुका स्वभाव है, वस्तु अनेकधर्मात्मक है। उसे स्याद्वादसे जाना जाय और फिर जो मेरा स्वभाव है उसका विकास किया जाय, यही धर्म है। वस्तुस्वरूपके विषयमें अधिक नहीं कहना चाहता क्योंकि समय अधिक नहीं है। आप स्याद्वादके सम्बन्धमें एक घटित घटना ले लीजिये—बनारसमें पं० गङ्गाराम जी बड़े विद्वान् थे। उनसे एक परिचित महाशयने जाकर पूछा कि आप जैन धर्मावलम्बियोंमें पैदा न होकर भी इस धर्ममें इतने अनुरक्त हैं ऐसा जैन धर्म क्या चीज है? थोड़ेमें जल्दी बतावें। तब पं० जी बोले—हम २ मिनटमें ही बताते हैं। उन्होंने अपने मकानके चारों ओरसे लिये हुए ४ फोटो उठाये, पहिले पूर्व दिशासे लिया हुआ फोटो दिखाकर पूछा कि बताइये यह किसका चित्र है? महाशय बोले—यह आपके मकानका चित्र

है। फिर दक्षिण वाला फोटो उठाया…और यह…, हां यह भी आपके मकान का है। फिर पश्चिम वाला उठाया…और यह…, यह भी आपके मकानका है। फिर उत्तर दिशासे लिया हुआ फोटो उठाया और यह, महाशय बोले कि यह भी आपके मकानका फोटो है। तब पं० जी बोले कि देखो यही तो स्याद्वाद है। मकान तो एक है परन्तु चारों ओरसे देखनेपर चारों चित्र आपने सही बताये, इसी तरह किसी भी वस्तुको उसमें जितने गुण व धर्म हैं उतनी दृष्टियोंसे उनको बताना यही स्याद्वाद है। लोगोंके जो जो विचार हैं उन्हें उन उन दृष्टियोंसे पहिचानते जावें फिर कोई जगड़ा ही नहीं होगा।

एक बात और आवश्यक है जो सबसे प्रधान है। वह यह है कि "मिथ्यात्व दूर करना" अथवा "सम्यग्दृष्टि होना" सच्ची दृष्टि पा लेना "मेरा धर्म" है। क्योंकि जैसी दृष्टि होती है बाह्य पदार्थके आश्रय वैसे ही विकल्प होते हैं। एक बार बादशाहने मन्त्रीसे पूछा कि मेरे नगरमें दोष देखनेवाले बहुत हैं या गुण देखनेवाले। मन्त्री बोला कि महाराज! सभी तो दोष देखनेवाले हैं और सभी गुण देखनेवाले हैं। राजाने कहा कैसे? मंत्री बोला कि मैं दो दिनमें बता दूंगा। मन्त्रीने क्या किया? एक सुन्दर पुरुषका चित्र लिया और घण्टाघर पर लगा दिया। नीचे नोट लिख दिया कि इस चित्रमें जिसे जो अङ्ग बुरा लगे उसपर निशान करदे, लोगोंने देखा और उन्होंने जिसे जो बुरा लगा उसपर निशान लगा दिये। मन्त्रीने महाराजको बतलाया। देखिये यह चित्र, निशानोंसे भर गया, दोषदृष्टिको देखिये। दूसरे दिन दूसरा चित्र ठीक वैसा ही फिर वहीं रख दिया, नीचे नोट कर दिया कि इस चित्रमें जिसे जो अङ्ग सुन्दर लगे उस पर निशान करदे। तब लोगोंने जिसे जो सुन्दर दिखा उसपर निशान लगा दिये। चित्र दिखाकर मन्त्री बोला—देखिये गुणदृष्टिको।

मतलब यह है कि जैसा लक्ष्य बनावो फिर वैसा ही दीखता है। हम अपने गुण और स्वभावको पहिचाने और उसीके विकासपर दृष्टि देवें तब हमारा कल्याण है।

अन्तमें मेरा आप सब बन्धुओंसे यही कहना है कि आप हमने शान्तिके अर्थ बहुत प्रयत्न कर डाले, अब एक यह भी प्रयत्न करके अनुभव कर लीजिये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि वस्तुको विविध दृष्टियोंसे यथार्थ जानकर, अपने आत्माके स्वरूपको यथार्थ जानकर मोह, राग, द्वेष दूर करें। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पापों से दूर रहें। मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्यका त्याग करें "आत्मनः प्रतिकुलानि परेषाम् न समाचरेत्" अर्थात् जो अपनेको बुरा लगे वह दूसरोंके लिये न करें। शराब, मांस, शहद, बड़ कठुम्बर आदि उदम्बर फलका भक्षण न करें। जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार खेलना, चोरी करना, परस्त्री सेवन करना, वेश्यागमन करना इन व्यसनोंको छोड़ें सदा। अपने ज्ञानस्वभावका ध्यान रखें यही मेरा धर्म पालना है, यही आत्मधर्म है, यही विश्व धर्म है, यही वस्तु धर्म है, इसका तो जैनधर्म इसलिये नाम पड़ गया कि जिन्होंने राग, द्वेष, मोहको जीता वह जिन है, परमात्मा है; उस जिनदेवके उपदेशमें यही वस्तु धर्म कहा गया, इसलिये जैन धर्म कहा जाने लगा।

तात्पर्य यह है जो हम सब अपने स्वभावको पहिचानें और उस ही रूप रहें यही मेरा धर्म है, यही सुखका उपाय है।

अब समय अधिक होगया, मैं सबकी कल्याण कामना करता हुआ अब अपने कथनको समाप्त करता हूँ।

ॐ शान्ति ! ॐ शान्ति !! ॐ शान्ति !!!

—:o ❋ o:—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ब्रह्म विद्या (Theosophy)

INTRODUTION

This address on 'Theosophy' was delivered by 'Sant Sahjanand ji Varni' at the Jabalpur Theosophical Lodge on Sundoy the 28th October, 1956. He is a well known and revered Kshullak among the followers of Jainism. But, a saint of any one religion is equally a saint of all religions. His teachings are for all mankind and as such are of universal and perennial value. It is therefore indeed a very good thing that his address is being published.

It may be of some interest to the readers to know what Theosophy and the Theosophical Society are.

THEOSOPHY is the body of truths which forms the basis of all religions. It offers a philosophy which renders life intelligible, and which demonstrates the justice and the love which guide its evolution. It puts death in its rightful place, as a recurring incident in an endless life and restores to the world the Science of the Spirit. It illuminates the Scriptures and doctrines of religions by unveiling their hidden meanings, and thus justifying them at the bar of intelligence, as they are ever justified in the eyes of intuition.

THE THEOSOPHICAL SOCIETY is composed of students, belonging to any religion in the world or to none, Who are united by their approval of the Society's object of forming nucleus of Universal Brotherhood of all that exists without any distinctions whtasoever, by their wish to remove religious antagonisms and to draw together men of goodwill

Report any errors at vikasnd@gmail.com

and by their desire to study religious truths and share them with others. Their bond of union is not the profession of a common belief, but a common search and aspiration for Truth. They extend tolerance to all, even to the intolerant. They see every religion as an expression of the Divine Wisdom and prefer its study to its condemnation, and its practice to proselytism. Peace is their watchword, as Truth is their aim.

Lastly, the Jabalpur Theosophical Lodge is grateful to those who were instrumental in arranging this address of Sant Shri Varni ji.

Theosophical Lodge,
708, Wright Town,
Jabalpur.

C.S. RAGHAVAN
Secretary,
Jabalpur T. S. Lodge.

[यह प्रवचन जबलपुरमें, थियोसाफिकल लाज, राइटटाउनमें थियोसाफीके प्रमुख सदस्योंके बीचमें श्री पूज्य सहजानन्दजी वर्णी द्वारा किया गया था। इसे लाजके प्रेसीडेन्ट श्री उमाशंकर श्रीवास्तव रि० जज की उपस्थितिमें प्रोफेसर सी. एस. राघवन द्वारा नियोजित किया गया था। थियोसाफिकल सोसायटी आज विश्वकी एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था है जो शांति, मुक्ति एवं पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्तोंपर आधारित है। क्षुल्लक श्री वर्णीजी ने इसके विषयमें अपने मौलिक उद्गार व्यक्त किये हैं।]

— संपादक

http://sahjanandvarnishastra.org/

The Psalm of Soul

Constant ! Wishless ! Absolute ! Free.
Knower ! Seer ! Soul is Me.

I am what Supreme Being is,
What myself is that God si;
With this sole apparent difference.
Here--"Passions", there--"Indifference"

My real Self like Siddhas* is :
Infinite Power ! Knowledge ! and Bliss !
Losing knowledge, being aspirant,
I am left a beggar—ignorant.

None else bestows pain and pleasure.
'Love' and 'Anger' are grief's treasure.
"Self" from "Non-Self" distinguish,
And then, there is no anguish.

Whose name Buddha, Rama, Ishwar,‡ Jina,
Brahma, Vishnu, Hari, or Shiva,—
Leaving passions, reach "the Goal"
No distress then in the Soul.

World does function by itself.
What work of it does my self ?
Alien influence ! Do get away !
In Bliss for-e'er may I stay ! !

---

* The emancipated souls.

‡ God, the master architect of his own modifications.

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ब्रह्म विद्या (Theosophy)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाया भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

बंधुओं ! प्रत्येक आत्मा शांति चाहती है और उद्यम भी सभी शांतिके लिये करते हैं किन्तु बिरले ज्ञानीके सिवाय कोई शांति प्राप्त नहीं कर पाता है। इसका कारण अज्ञान है। यह बात पूर्ण सत्य है कि थिओसाफी (Theosophy) अर्थात् ब्रह्मविद्याके बिना कोई भी प्राणी शांति नहीं पा सकता। ब्रह्मका 'निरुक्तयर्थं' बृंह्णाति इति ब्रह्म अर्थात् स्वगुणैं बृंह्णाति इति ब्रह्म, याने जो अपने गुणोंसे बढ़े, वह ब्रह्म है। इस व्युत्पत्तिके आधारसे ब्रह्मसे लक्षित आत्मा है। विद्या का अर्थ है 'वेद्यते इति विद्या' अर्थात् ज्ञान। आत्माके यथार्थ ज्ञान को ब्रह्मविद्या (Theosophy) कहते हैं। इस ब्रह्मके जानने के लिये सहायक ज्ञान है, सभी पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान। इसलिये सर्वप्रथम पदार्थोंके स्वरूप पर थोड़ा दृष्टिपात करें।

पदार्थ की परिभाषा

पदार्थ वह कहलाता है जो अविभक्त (indivisible) है। जिसके अणु हो जाते हैं वह पदार्थ नहीं, किन्तु अनेक पदार्थोंका समूह है। जैसे ये काठ वगैरह दिखते हैं, इनके टुकड़े हो जाते हैं, यह पदार्थ नहीं। पदार्थोंका समूह स्कन्ध (molecule) है। पदार्थ तो इन स्कंधों में रहने वाला अविभक्त परमाणु है। यह परमाणु आजकलके विज्ञान का atom नहीं, किन्तु ultimate particle है।

पदार्थों के प्रकार

सर्व पदार्थ ६ प्रकारके होते हैं—आत्मा, परमाणु, धर्म, अधर्म, आकाश और काल याने Soul, atom (mass), motioncausality, rest-causality, space (immersioncausality) and time-causality. इनमें आत्मा soul और परमाणु (atom) को छोड़कर शेष चार सुगम्य नहीं। अतः उनकी अभी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चर्चा न करके soul और mass के सम्बन्ध में विचार करें। और, ब्रह्मविद्या को समझने के लिये आत्मा और पुद्गल(mass) को जानना अत्यावश्यक और प्रासंगिक भी है। इसलिये soul और mass के वर्णनके बाद हम ब्रह्मविद्या के विषयमें कहेंगे।

पदार्थ की विशेषताएं

पदार्थ अविभक्त होता है और उसकी यह विशेषता है कि वह निरंतर बनता है, बिगड़ता है और बना रहता है। क्योंकि पदार्थ किसी न किसी अवस्थाको लिये हुए ही रहता है। अतः जो अवस्था वर्तमान है वह तो हुआ बनना और उससे निकट पहिले की अवस्था नहीं रही, यह हुआ बिगड़ना तथा जो बना व बिगड़ा वह एक वही है यह हुआ बना रहना। जैसे सुवर्णकी एक चेन है, उसका मेडिल बना लिया तो मेडिलका तो बनना हुआ और चेनका बिगड़ना हुआ तथा सुवर्णका बना रहना हुआ। इसे दृष्टान्तरूपमें देखना। वस्तुतः सुवर्ण भी पदार्थ नहीं, पदार्थोंका समूह है। इस बनने, बिगड़ने, बने रहनेको कहते हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य याने manifestation, disappearance and permanence.

यह त्रितय (trinity) प्रत्येक आत्मा और परमाणुमें पाया जाता है और प्रत्येक द्रव्यमें भी। जैसे कोई आत्मा क्रोध करके शांत हो गया तो शांति का तो manifestation उत्पाद हुआ और क्रोधका disappearance हुआ तथा उनका मूलभूत वही एक गुण है, सो आत्माका बना रहना हुआ। अभी यह मनुष्य है, मानो यह किसी पशु पर्यायके बाद आया तो मनुष्यका तो उत्पाद हुआ, पशु पर्यायका व्यय और आत्माका बना रहना हुआ। इसी प्रकार यह जीव ब्रह्मविद्याके अतुल प्रतपनसे जब मुक्त हो जावेगा तब मुक्तका तो उत्पाद manifestation हुआ और संसार पर्यायका व्यय तथा आत्माका बना रहना जानें।

इस विशेषताके अतिरिक्त यह भी विशेषता जानें कि पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप रहता है। जैसे यह एक पुस्तक है, यह पिन्ड तो हुआ द्रव्य entity, यह जितने निज प्रदेशोंको ओकुपाइ करता है वह है क्षेत्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

space occupied. इसकी जो अवस्था है, पर्याय है, modification है, जैसे यह पीला है आदि वह है काल, और इसमें जो गुण हैं वह सब हैं भाव attributes, रूप गंध स्पर्श आदि। इसी प्रकार आत्माको देखें—समस्त परद्रव्योंसे पृथक् शरीर कर्मसे भी पृथक्, रागादिक extrinstic emotions से भी पृथक्, चैतन्य मात्र यह आत्मद्रव्य है। यह स्वयंके जितने प्रदेशोंमें व्यापे सो वह है क्षेत्र, आत्माकी जो भी वर्तमान अवस्था है, वह है काल, इसमें जो जो शक्तियां हैं, वे सब हैं भाव। आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र काल भाव रूप रहता है। वह न परके द्रव्यरूप है, न परके क्षेत्ररूप है, न परके परिणमन रूप है और न परके भावरूप है।

पदार्थ का स्वरूप

पदार्थ कितना है, इसको विशदज्ञप्तिके लिये इस तरह भी उसके स्वरूप तक पहुंचना चाहिए। पदार्थका प्रत्येक परिणमन उस पदार्थमें पूरेमें रहता है और उस पदार्थसे बाहर उसका परिणमन या कोई भी गुण नहीं रहता है। जैसे आत्माके आनंद होता है तो वह आनंद संपूण आत्मप्रदेशोंमें एक होता है और आत्मासे बाहर आनंद होता नहीं है। ऐसे ही सब पदार्थोंकी व्यवस्था है। प्रत्येक पदार्थमें जो प्रतिसमय परिणमन होते हैं वे उसके स्वयंमें ही होते हैं। वही पदार्थ बनता है, बिगड़ता है, बना रहता है। जो बनता है वही बिगड़ता है व वही बना रहता है। जो बिगड़ता है, वही बनता है और वही बना रहता है। जो बना रहता है—वही बनता है और बिगड़ता है। ये तीनों एक ही समान हैं। ऐसा नहीं है कि पहिले बने और फिर बिगड़े या पहिले बिगड़े फिर बने आदि। जैसे यह सीधी अंगुली है, अब यह टेढ़ी हो गई तो इस समय सीधीका व्यय हुआ और टेढ़ीका उत्पाद हुआ व अंगुली वही की वही।

जो परिणमन होता है वह स्वयंकी योग्यता से होता है, अन्य कोई भी पदार्थ परिणमाता नहीं है। आत्मामें राग आदि भाव होते हैं वे आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें होते हैं। हां! यह बात अवश्य है कि वे कर्मोंके उदयके निमित्तसे होते हैं, तिस पर भी आत्मा रागादिरूप स्वयं परिणमता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसी तरह कर्मभी बंधते हैं, वे उनके अपने आपमें, किन्तु ऐसा होनेमें निमित्त आत्माके रागादि भाव हैं।

आप जो यह देख रहे हैं, यह सब प्रकाश इस बिजली का न समझें। किन्तु आइने पर जो प्रकाश है वह आइनेका है, पिछी पर प्रकाश है वह पिछी का है, काठ पर काठ का, पुस्तक पर पुस्तकका। अन्यथा आपही बतावें कि आइने पर प्रकाश अधिक क्यों? पुस्तक पर कम क्यों? जबकि बिजलीका प्रकाश सबपर एकसा है।* इसका समाधान केवल यह है कि जिस पदार्थकी जैसी योग्यता है वह पदार्थ वैसा प्रकाशयुक्त है। हां! यह बात अनिवार्य अवश्य है कि उसके इस परिणमनमें प्रकाशित बिजली निमित्त है। यदि बिजली आदि जैसा निमित्त न हो तो ये पदार्थ अंधेरे अवस्थामें हो जाते। बिजलीका प्रकाश तो बिजलीके तार तक ही है। यदि यह प्रकाश बिजली का होता तो बिजली इतनी बड़ी कहलाती चाहिये। *

पर्याय आती है, चली जाती है। क्रोध आता है चला जाता है। क्रोध आता है जानेके लिये। रागभाव होता है जानेके लिये। निमित्त परद्रव्य है किन्तु परद्रव्य स्वयंका ही काम करता है। कोई गाली देता है और दूसरेको उसका निमित्त पाकर क्रोध आजाता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि गालीने क्रोध उत्पन्न कर दिया। यदि गाली क्रोध उत्पन्न करे तो साधुके भी क्रोध उत्पन्न कर दे सो यह होता नहीं। अतः वास्तविकता तो यह है कि जो जैसा है, मलिन है अथवा निर्मल है वह उसीके अनुरूप मलिन अथवा निर्मल पर्याय प्रकट कर लेता है। मलिन पर्यायमें परद्रव्य निमित्त होता है, निर्मल पर्याय परकी निमित्तताके अभावमें होती है।

आत्मा इस समय इस पूर्ण शरीरमें व्याप्त है, अखंड है। इसका परिणमन पूर्ण आत्मामें होता है। ज्ञान होता है तो आत्मामें सर्वत्र इन्द्रियों व मस्तिष्कमें मालूम पड़ता है। इसलिये इस पराधीन अवस्थामें ज्ञान उत्पन्न होनेका निमित्त

*(In Einstein theory of relativity the idea of force and action at a distance has been replaced by that of space-time property and field.)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रियां हैं। कांटा लगता है तो वेदना होती है आत्मामें सर्वत्र। जिस भागमें कांटा लगता है तो वेदना होती है आत्मामें सर्वत्र। जिस भागमें कांटा लगा है उस भागमें मालूम होता है इसलिये कि वेदनाका निमित्त वह भाग बना है। ज्ञान और आनंद भी उत्पन्न होता है केवल दृष्टि उस ओर जानेसे, अतः कष्टका अनुभव परिणमन पूरे आत्मामें होता है। इसही स्वयंके आत्मामें सर्वत्र। मोही जीव बाह्यमें इसलिये यह मान्यता करता है कि अमुक पुस्तक या गुरुसे ज्ञान हुआ था अमुक पदार्थसे आनन्द मिला चूंकि ज्ञानमें वह विषय आया तथा पदार्थके प्रसंगके अवसरमें सुख प्रकट हुआ।

विचारों की महत्ता

विचारोंकी भी बड़ी शक्ति होती है। विचार जैसा करेंगे वैसे आप हो जावेंगे। जैसे गांवके किसी बासिन्दे को मालूम हो जाय कि उसे भूत लगे हैं, उसने ऐसी कल्पना कर ली "मैं भूत हूं, मैं भूत हूँ"। इस विचारसे वह यह भूल जाता है कि वह आदमी है। अपने आपको भूत समझ लेनेका यह परिणाम होता है—वह उचकने लगता है, भूत जैसी क्रियाओं को करने लगता है। इसी प्रकार कोई भोगके अनुकूल विचार बनाता है तो वह सुखका अनुभव करता है। यदि कोई आत्मधर्मके अनुरूप भाव करता है तो वह सहज परम आनंद का अनुभव करता है। इस कारण मित्र! बाह्यका तो कोई कुछ कर नहीं सकता क्योंकि कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यरूप परिणमता ही नहीं है सो अब अपना ही सुधार करना ही रह गया है।

हमारा भ्रम

जब आत्मा परपदार्थ स्त्री, पुत्र, धन, शरीर आदिको अपना माननेका भ्रम करता है तब उसे महादुःखी होना पड़ता है। कोई भी परपदार्थ आत्मा का तो कुछ है ही नहीं सो इसकी इच्छासे ये नहीं परिणम सकते हैं किन्तु मोही आत्मा इच्छा करता ही रहता है। अतः इसे दुःखी होना ही पड़ता है। अन्यकी बात पीछे रखो, इस शरीरको ही देखलो—आत्माके निकल जानेके बाद मित्र-सम्बन्धी द्वारा शीघ्र भस्म कर दिया जाता है, इसी शरीरको एक मिनट भी घर रखना पसंद नहीं करते।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मा केवल निज आत्माका ही कार्य कर सकता है। यदि यह भक्ति, दान, तप आदि के भाव करता है तो यह पुण्य अवस्था पाता है। यदि वह बुरे भाव करता है तो उसही विचारक का बुरा हो जाता है। किन्तु परमात्मरूप, आत्मस्वभावरूप भाव करता है तो वह परमात्मतत्त्वको पा सकता है। थियेटरोंमें जो पार्ट करने वाला है वह यदि यह भाव बना लेता है कि मैं तो अमुकका घातक ही हूं तो वह अपनेको भूल जाता है और दूसरेकी हत्या कर डालता है। भाव यह कि आत्मा अपनेको जैसा मान ले वैसी चेष्टा करने लगता है। सो भैया ! अपनेको यथार्थ सहज चैतन्यरूप अनुभवें, जिससे ज्ञाता द्रष्टा, साक्षी मात्र रहकर सर्वविपदाओंसे मुक्त हो सकें। स्वयंको यथार्थ समझ जाना ही ब्रह्मविद्या (Theosophy) है।

आत्मा की महानता

इस आत्माके लिये स्वयं यह आत्मा महान् है। एक बार एक पुरुषको जो दुर्व्यसनी था, स्त्रीने कहा "आप हमारी केवल एक बात मान लीजिये"। पुरुषने कहा "मानूंगा"। स्त्री बोली 'यह लो एक देवता है, इसकी रोज पूजा किया करो और २४ घंटेके लिये पाप छोड़ दिया करो।' अब वह चावलसे उसकी रोज पूजा करने लगा। एक दिन चूहा चावल खा गया। उसने सोचा कि इससे तो चूहा ही बड़ा है। उसने अब चूहेकी पूजा करना शुरू कर दी। एक दिन चूहे पर बिल्ली झपटी, सो चूहेसे बड़ी बिल्लीको जानकर बिल्लीकी पूजा करने लगा। बिल्ली पर कुत्ता झपटा, सो बिल्लीको छोड़ कुत्तेको पूजने लगा। एक दिन कुत्ता रसोई घरमें जाने लगा सो स्त्रीने २-३ बार डंडा कुत्ते को जमा दिया। कुत्ता चिल्लाने लगा। पुरुषने सोचा कि कुत्तेसे बड़ी तो मेरी स्त्री है सो वह रोज स्त्रीको पूजने लगा। एक दिन दालमें बहुत अधिक नमक गिर गया था सो पुरुषने एक ग्रास लेनेके बाद ही कहा कि इसमें नमक ज्यादा क्यों गिर गया ? स्त्रीको तो पूजाके कारण घमंड आ गया था, बोली, कि क्या हर्ज हुआ ? ज्यादा नमक गिर गया तो पानी मिला लो। पुरुषको क्रोध आ गया। उसने क्रोधमें २-४ घूंसे स्त्रीको जमा दिये। स्त्री रोने लगी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तब पुरुषने सोचा कि अरे मैं किस-किसको बड़ा मानता फिरा, आखिर बड़ा तो लो यह मैं ही निकला।

सो भैया ! कहीं घूम आदो, कहीं दिमाग लगा लो। वास्तवमें आपके लिये आप ही स्वयं महान् हो। क्योंकि ज्ञानरूप तुम ही तो परिणमते हो। अपने स्वरूपको, जो परमात्माके स्वभावसे पूर्ण मेल रखता है, देखो, जानो तो मुक्ति का उपाय, परमात्मा होने का उपाय पा ही लिया समझिये। अपना मर्म समझना ही थिओसाफी (Theosophy) है।

अंध विश्वास

प्राय: लोग रूढ़िगत विश्वासके आधार पर अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। कदाचित् किसी रूढ़िका मूल सच्चा भी हो तो भी रूढ़ि बन जाने पर मर्म छिप जाता है, तब उस रूढ़िका अनुसरण भी हितकी रुकावट बन जाता है। जो बड़ोंने कहा उसको सत्य मानकर चलनेकी अपेक्षा खुद अनुभव करके चले यह सत्य है। किसी बड़े ने बच्चे को कहा—देख बच्चा ! वह कौआ जो जा रहा है, वह तेरा कान ले गया। अब वह बच्चा कौवाके पीछे भागता है। लोग पूछते—कहां भागते हो ? वह कहता कि कौवा मेरे कान ले गया। लोगोंने कहा—नहीं ले गया। वह बोला—वाह हमको बड़े आदमीने कहा। लोग बोले—बेटा ! अपना कान तो टटोल कर देख, टटोल कर देखा तो शान्त हो गया। संसारके प्राणी भी तो नाना मजहबोंके बहाने जीवन बिताते जाते है। प्यारे भाइयों ! एक बार तो अपना अनुभव करो, फिर समझ लो कि देव कौन है ? गुरु कौन है ? धर्म कौन है ? उद्धारक कौन है ?

सामान्य की महत्ता

लोग विशेषमें ही अटके हैं, विशेषको ही महत्त्व देते हैं। परंतु शांति मार्गमें तो सामान्य का महत्त्व है, सामान्य दृष्टिका महत्त्व है। लोकमें भी देख लो, जैसे अभी ये सब भाई बैठे हैं, इन्हें यदि कोई विशेष दृष्टिसे देखे कि ये धनी हैं, ये गरीब हैं, ये पंडित हैं, ये मूर्ख हैं, ये ब्राह्मण हैं, ये वैश्य हैं आदि आदि, तो उसे आकुलता ही प्राप्त होती है। यदि कोई सबको एक सामान्य

Version 1

मनुष्य दृष्टिसे ही देखे तो उसे आकुलता नहीं होती। अब एकही मनुष्यपर घटावें। मनुष्यको बालक, जवान, बूढ़ा आदि अवस्थाओंमे देखो तो नाना विकल्पोंका शिकार बनना पड़ता है। यदि सब अवस्थाओंमें रहने वाले एक मनुष्य सामान्यकी दृष्टिसे देखो तो विकल्पोंका ऊधम ही नहीं होता।

जगत्में आत्मा अनंत हैं। जो उनके विशेषको ही महत्त्व देते हैं, वे ब्रह्मविद्यासे दूर होते जाते हैं और जो सामान्यको महत्त्व देते हैं वे ब्रह्मवित् हो जाते हैं। इन आत्माओंको जो पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी आदि विशेषोंसे देखते हैं, तो जानो विकल्प व अज्ञानतायें उत्पन्न करते हैं। एवं एकही आत्माको जो पूर्वापरवर्ती पशु, मनुष्य आदि अथवा बालक, जवान, बूढ़ा आदि या क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी आदि रूपसे देखते हैं, वे भी विकल्प व आकुलतायें उत्पन्न कर लेते हैं।

जो भव्य सब आत्माओंको चैतन्यमात्र जानते हैं और जिस आत्माको भी चैतन्यमात्र परखते हैं, अवस्थाओंके विशेषरूप नहीं देखते हैं, वे चैतन्यमात्र निजब्रह्मका अनुभव करते हैं। यही परमात्मविद्या (Theosophy) का true style है।

सर्व विशेष, विकल्पोंको हटाकर जाति, कौम, मजहब आदिके पक्षोंसे दूर होकर अपनी क्षणिक अवस्थाओंरूप भी अपनेको न मानकर चिन्मात्र अनुभवन करते हैं, वे ब्रह्मवित् हैं।

अहिंसा क्यों ?

यह ब्रह्मविद्या वाला पुरुषार्थी अहिंसक होता है। यह मुक्तिपथकी ओर बढ़ता है। जो मुक्तिपथकी ओर बढ़ता है, अपनेको सर्वक्लेशसे मुक्त करनेकी ओर बढ़ता है, वह दूसरोंके प्रति भी यही भाव रखता है कि अन्य सब आत्मा भी दुखोंसे छूटें। भैया ! संक्लेश तो दुःखका बीज है और समता मुक्तिका स्रोत है। ब्रह्मवित् सबको यह चाहता है कि दूसरेको दुःख न हो। यदि किसी को संक्लेश हुआ तो वह पापकर्मसे बंध जावेगा और आगे भी दुःखी होना पड़ेगा। दुःख स्वयंको इष्ट नहीं है तो वह दूसरे को भी नहीं सताता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मरते समय जीवकी जैसी मति होती है, परलोककी गति भी वैसी होती है। जो प्राणी क्रोध करता हुआ मरता है, वह नारकी बनता है। जो मायाचारीके परिणाममें रहकर मरता है, वह पशु पक्षी आदि होता है। जो प्राणी सदाचार व रागभावसे मरता है वह देव होता है। जो समतासे, सरलता से मरता है, वह मनुष्य होता है। जो संक्लेशसे मरता है उसकी असद्गति होती है। आघातसे मरते समय जीवके संक्लेश हो जाता है। ब्रह्मवित् जो अपने लिये व दूसरेके लिये समाधिसे मरणको चाहता है—बताओ भैया! वह कैसे दूसरे जीवोंका घात करेगा या प्रमाद करेगा।

संक्लेश परिणामसे तो यह जीव जिस अवस्थामें है, उससे भी निम्न अवस्थामें हो जाता है। जीवकी निम्नतम अवस्था निगोद है, जहाँ यह जीव एक सेकिंडमें करीब २१ बार जन्म-मरण करता है। कुछ संक्लेश कम हुआ तो यह जीव पृथ्वी, जल, आग, वायु या हरित वनस्पति हो जाता है। वहां भी संक्लेश कम रहा तो जीव दो इंद्रिय हो जाता है तथा संक्लेश कम होते जाने पर त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पशु, पक्षी, नारकी, देव व मनुष्य हो जाता है।

जो जीव जिस अवस्थामें है यदि उसका आघात से, हत्यासे मरण हुआ तो वह उससे नीची अवस्थामें पहुंच जाता है। ब्रह्मज्ञानीको जैसे अपनी उन्नति अभीष्ट है, वैसे सबकी भी उन्नति अभीष्ट है अतः वह वस्तुतः "यह जीव मुक्तिसे दूर न होजाय" इस परम प्रयोजन और परम करुणाके कारण किसी जीवकी हिंसा नहीं करता। मैं किसीकी असद्गतिमें क्यों निमित्त बनूं, कोई जीव मुक्तिसे दूर न होता जाय, वह उत्तरोत्तर प्रगति कर मुक्ति की ओर बढ़े, ऐसी महती परम करुणा ब्रह्मवित्के होती है। ब्रह्म ज्ञानीके अहिंसक होनेका मूल कारण यह सद्भाव है।

देखो भैया! अपने सब बहुत उच्च अवस्थामें आ गये हैं। मनुष्यसे ऊंची अवस्था अन्य किसी भी संसारी जीवोंकी नहीं है। इससे उच्च अवस्था है तो केवल परमात्मदशा है। ऐसे उच्च साधनोंको पाकर प्रमाद नहीं करना चाहिये। आत्मज्ञान प्राप्त करके सदाके लिये सर्व-क्लेशोंसे दूर हो जाइये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानीकी गलतीका भी लौकिक महत्व

देखिये, जगतमें जिन बातोंकी प्रशंसायें हो रही हैं, वे सब बातें ज्ञानियों की गलतियोंके परिणाम हैं। अर्थात् वे ज्ञानीकी गलतियोंकी प्रशंसायें हैं। ज्ञानी के जो राग शेष रह जाता है जो कि गलती है उसका भी इतना महत्त्व है, जिससे पूरा राष्ट्रका राष्ट्र न्योछावर हो जाता है। तब सोच लो ज्ञानका कितना महत्व है? ज्ञान व उसके आनंदका महत्त्व किसी प्रकार आंका भी नहीं जा सकता है। वह सर्वोच्च महत्त्वपूर्ण है। जैसे राष्ट्रपतिका नौकर आदरणीय हो जाता है ना! वैसे ही ज्ञानीकी गलती याने देशसेवा, उपकार आदि अनुरागपूर्ण कृत्य लोकपूजित हो जाता है। ब्रह्मज्ञानकी अपूर्व महिमा है। अनात्मज्ञानीके द्वारा भी सेवा उपकार हो जाते हैं किन्तु वे निरपेक्ष कार्य नहीं हो पाते हैं। पर्यायबुद्धिकृत कोई अभिप्राय बना रहता है। प्रतिष्ठा या आराम के लिये उनकी चेष्टायें रहती हैं।

इच्छाके अभावमें सुखका सद्भाव

आत्मज्ञानी अन्तरङ्गसे कुछ नहीं चाहता। अन्तरङ्गसे इच्छाका अभाव होनेसे ब्रह्मज्ञानी आनन्दमग्न रहता है। वस्तुतः सर्व प्रकारके सुख, इच्छाके अभावके परिणाम हैं किन्तु मोही यह मर्म नहीं जान पाता है और किसी अन्य पदार्थसे सुख हुआ, ऐसा मानता है। जैसे किसी पुरुषके पास उसके मित्रकी चिट्ठी आई। लिखा था कि मैं दुपहरको ११ बजे ट्रेनसे स्टेशन पहुँचूंगा। वृत्त ज्ञात करनेपर उसके तीव्र अभिलाषा हुई उससे मिलने की। अब आप देखें आकुलता ही आकुलता मचाने लगा। जल्दी खाया, चला, स्टेशनपर गाड़ीकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी लेट सुनकर खिन्न हुआ। गाड़ी आई, डिब्बा देखने की व्यग्रता, मित्र दीखा। डिब्बेमें मिला, शांत हुआ। आप बतायें यह शांति क्या मित्रसे मिलने की है? नहीं। यदि मित्रसे मिलनेका सुख होता तो अब वहांसे भागनेकी क्यों सोचता है! गाड़ी थोड़ी ठहरती है, मैं जल्दी यहांसे उतरूं, ऐसा यत्न क्यों करता है? भैया! वह शांति, आशा—इच्छाके अभाव की थी। मित्र मिला, उस समय "मुझे मित्रसे मिलना है ऐसी आशा और इच्छा नहीं रही" इसका यह आनंद है और मित्रसे मिल जाने पर अब घर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जानेकी इच्छा होगई, उसकी आकुलता है। इच्छा ही आकुलता है और इच्छा का अभाव ही शान्ति है।

ज्ञान और आनंद आत्मासे ही और आत्मामें ही प्रकट होते हैं। जिस द्रव्यका जो गुण, पर्याय है, वह उसी द्रव्यमें होता है। ज्ञान गुरु या शास्त्रसे नहीं आता। वे निमित्त मात्र अवश्य हैं, परन्तु उनसे आनन्द नहीं मिलता।

ज्ञान आत्माका गुण है, आत्मासे ही प्रकट होता है। यदि गुरुसे ज्ञान आता है तो सौ-दोसौ शिष्योंको ज्ञान देने पर गुरु ज्ञानसे खाली हो जायगा। यदि शास्त्रसे ज्ञान आता है तो किसी वाक्यका अर्थ समझमें न आनेपर समझने के लिये अपने आप पर जोर क्यों लगाते, पत्र क्यों नहीं मरोड़ने लगते ? आनंद आत्माका गुण है, आत्मासे ही प्रकट होता है। यदि आनंद लड्डुओंसे आता है तो लड्डुओंको पीछे छोड़ते क्यों हैं ? मुख तक लड्डू भर लिये जावें। आनंद तो इच्छाके अभावमें है। कोई लड्डू खानेकी इच्छाही नहीं करता, वह सहज आनन्दपूर्ण है। खाने आदिकी इच्छा और प्रयत्नमें तो आकुलता ही है।

आत्मा ज्ञानानंद स्वरूप है, ज्ञानानंदमय है, अखंड एवं प्रभु है, यही ब्रह्म है। ब्रह्मस्वभावके अनुभवी कृतकृत्य हो जाते हैं। ब्रह्मज्ञानीमें इच्छाओंको स्थान नहीं। ब्रह्मवित्को पूर्वोपार्जित कर्मके उदयवश रागभी आये और गृहस्थी में रहना भी पड़े तो वह वहां भी विरक्त है। मोक्षमार्ग आत्मोन्मुखता ही है। इसे योगी भी करते और गृहस्थ भी कर सकते हैं। योगीका बाह्य वातावरण निःसंग है, अतः वे आत्मामें अधिक समय तक स्थिर हो जाते हैं। गृहस्थका वातावरण ससंग है, अतः वे कुछ समय आत्मामें स्थिर हो पाते हैं। उन्हें अपने आत्माके आनंदका अनुभव करनेको कम मौका मिलता है। उसे तो गृहस्थीमें भी कैदीकी तरह न चाहते हुए भी काम करना पड़ता है। कैदीको इच्छा नहीं रहती कि मैं काम करूं। वह काम करता है यह सोचता हुआ कि मुझे यह सब करना पड़ रहा है। इसी तरह ज्ञानी जिसने निराकुल, ज्ञानमय कल्पना स्वरूप अनुभूत कर लिया है, वह अन्य कुछ भी नहीं करना चाहता है किन्तु क्या करे, अज्ञान अवस्थामें जो कर्म बांधे, उन्हें तो कुछ भोगना पड़ता है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्याणपथ

परमात्माका स्वरूप और प्रत्येक आत्माका स्वरूप एक है। प्रत्येक आत्मा जो अपने इस परमस्वभावका अनुभव करले, वह अपने आश्रयसे परमात्मा हो सकता है, सर्व दुःखोंसे मुक्त हो सकता है। इस परम आनन्दमय सर्वज्ञानमय निज अवस्थाकी प्राप्तिके लिये स्वयंको ही ज्ञानमय पुरुषार्थ करना पड़ेगा। परमात्म-भक्ति भी इसीका अर्थ है। परमात्माका उपदेश भी यही है कि जगत् के जीवों ! मेरे स्वरूपको देखो, ऐसा ही तेरा स्वरूप है और अपने स्वरूपको देखकर मेरा भी विकल्प छोड़ो, अपने स्वरूपमें लीन हो जावो। वास्तवमें परमात्मस्वरूप भक्तिके अन्तर उपासक अपनेमें अनन्य हो जाता है।

कल्याणके लिये दो बातोंका जानना बहुत आवश्यक है— (१) पदार्थका स्वरूप, (२) शांतिका मार्ग। पदार्थका स्वरूप तो पहिले कह चुके हैं कि पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है; manifestation; disappearance and permanence इस trinity से युक्त है। शांतिमार्ग-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-चारित्रकी एकता है, अर्थात् right perception, right knowledge and right character इन तीन की identity रूप है।

देखिये, भारतका राष्ट्रध्वज भी पदार्थस्वरूप और शांतिमार्गके विषयमें यही संकेत करता है। इस ध्वजमें ३ रंग हैं—(१) लालमिश्रित पीला, (२) सफेद, (३) हरा। हरा रंग उत्पाद (manifestation) का सूचक है। लाल रंग व्यय (disappearance or destruction) का सूचक है। सफेद रंग ध्रौव्य (permanencey) का सूचक है। साहित्यमें इन्हीं रंगोंके प्रतिरूपसे उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यका वर्णन होता है। इसी प्रकार साहित्यमें सम्यग्दर्शनका, आत्म-रुचिका रुचिकर वर्णन लाल, पीला से। सम्यक्चारित्र, उन्नतिका वर्णन हरे रंगसे व ज्ञानका वर्णन स्वच्छ सफेद रंगसे होता है। जैसे सफेद रंग पर लाल, हरा आदि रंग चढ़ते हैं, वैसे ध्रुव वस्तुमें ही उत्पाद व्यय होते हैं और ज्ञानका ही श्रद्धान व विकार परिहरण स्वभावसे परिणमना सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र है। भव्य पुरुषों ! सम्यग्दर्शन अर्थात् ब्रह्म-अनुभव मुक्तिका प्रारम्भ है। यह Theosophy ब्रह्मविद्यासे साध्य है। अतः वास्तविक आत्मस्वरूपको जानो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने आत्माके सम्बन्धमें ज्ञान बढ़ावें—मैं आत्मा समस्त परपदार्थोंसे भिन्न हूँ, अनादि अनन्त हूं, एक रूप हूँ, समस्त पर्यायोंसे गुजरता हुआ भी मैं किसी एक पर्याय रूप नहीं हूं, चैतन्यमात्र हूँ।

बन्धुवर! ब्रह्मविद्याकी बात वस्तुतः अनुभवगम्य है। कथन भी किया जाय तो उसका बड़ा विस्तार है तथा उस कथनको स्पष्ट करने के लिये आवश्यक अनेक प्रसंगोंका कथन भी विस्तृत है। इस वर्षायोगके अन्तमें अब जाने का समय हुआ। अतः आज संक्षेपमें ब्रह्मविद्या और ब्रह्मविद्यासे सम्बन्धित कुछ विषय कहा।

आप सबके ब्रह्मविद्या (Theosophy) में लगने के प्रोग्रामसे मुझे महती प्रसन्नता हुई। Theosophy Society का जो उद्देश्य है। वह हमारा भी उद्देश्य है। हम इसकी कार्यवृद्धिकी मंगल कामना करते हैं।

ॐ शांतिः ॐ शांति ॐ शांति

श्री उमाशंकर श्रीवास्तव रि० जज सा० का वक्तव्य

(प्रेसीडेन्ट, थियासाफिकल लाज, राइट टाउन, जबलपुर)

यह हमारे लिये परम हर्षकी बात है कि आध्यात्मिक सन्त स्वामी सहजानन्द जी महाराजने बड़ा कष्ट उठाकर हम लोगोंके बीचमें एक बिल्कुल मौलिक एवं नवीन दृष्टिकोणसे ब्रह्मविद्याके सिद्धान्तों को रखा है। वे इतने गहरे और रुचिकर हैं कि उनके विषयमें अभी कुछ और ऐसे उनके व्याख्यानों और प्रवचनोंकी आवश्यकता है। हमें और पूर्व इसकी सूचना मिली होती तो हम उनसे और लाभ ले सकते थे। विशेषकर निमित्तनैमित्तिक परिणमन जैसी गहरी सिद्धान्तकी बातों पर तो बड़ी सूक्ष्मतासे सोचनेकी आवश्यकता है। हम सभी स्वामीजी के आभारी हैं, जो उन्होंने अपना अमूल्य समय खर्च किया और उनसे प्रार्थना करते हैं कि समय-समय पर वे इसी प्रकार कष्ट उठाकर हम लोगों को प्रबोधित करते रहें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

(१)

मैं वह हूँ जो हैं भगवान्, जो मैं हूँ वह हैं भगवान् ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं राग वितान ।।

(२)

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित-शक्ति सुख-ज्ञान-निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।

(३)

सुख-दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।

(४)

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।

(५)

होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, "सहजानन्द" रहूँ अभिराम ।।

—:० * ०:—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानीकी पूजा

(एक अध्यात्मगोष्ठीमें किया गया प्रवचन)

जो जगत्के वैभवोंसे अत्यन्त उदासीन हैं, निकट प्राप्त तन, मन, धन, वचनोंको परोपकारमें लगाने में परम उदार हैं, जो शत्रु मित्र, आराम क्लेश, वैभव पाषाण आदिको एक समान मानते हैं ऐसे स्वपरोपकारी ज्ञानी संत जयवंत हों। अहो, ज्ञानियोंकी यह अलौकिक वृत्ति कैसे होगई ? इसमें कारण उनका विशुद्ध ज्ञान है। इन अलौकिक आत्मावोंने अपने शुद्ध सहज परमात्म-तत्त्वको पहिचान लिया है। इन अन्तरात्मावों ने समस्त परपदार्थ और उपाधि-निमित्तक विभावोंसे पृथक् चिज्ज्योतिमात्र अपनेको अनुभूत कर लिया है। अब यह ज्ञानी अन्य पदार्थोंका तो ज्ञाता बना ही है, किन्तु अपने में होने वाले कर्मों का (परिणमनोंका) भी ज्ञाता बना हुआ रह रहा है। यह ज्ञानी अपने ज्ञान-परिणामको भोगता हुआ आनन्दमग्न रहता है। कर्मोंका फल भोगनेकी इसे फुरसत भी कहां है ? वह तो समस्त परभावोंसे हटता हुआ बना है। कर्म उदयमें आते हैं आवो, नहीं आते हैं मत आवो, वह तो उनकी क्रिया है। मैं उनको नहीं भोग सकता हूं और उन कर्मोंके उदयको निमित्त पाकर जो विभाव परिणमन उठते हैं उनको भी है नहीं भोगता हूं क्योंकि उनसे तो मेरा भिन्न स्वरूप है, निजस्वरूपमें ही मेरी बात है, मैं तो केवल चैतन्यमात्र अपने आत्माके संचेतन का ही अनुभव करता हूं।

जैसे किसी दुकानदारको अपने उसी कामसे फुरसत नहीं है उसी दुकान पर ही दृष्टि है तो दुकानपर आने वाले अन्य पुरुष यदि कोई और चर्चा करने लगें तो वह दुकानदार उनसे कह देता है कि जावो मुझे फुरसत नहीं है। उसी प्रकार ज्ञानस्वभावमात्र आत्माके स्वरूपको जान लेने वाला पुरुष पूर्वमें बांधे हुए कर्मोंके उदय आनेपर कहता है कि मुझे तुम्हारी चिन्ता नहीं, तुम जावो, मुझे समय नहीं तुम्हारी तरफ उपयोग देनेको, मैं तो अपने ही ज्ञानस्वभावकी पूजामें लगा हूं। ज्ञानी जीव कर्मफलके प्रति उदासीन है। राग द्वेष सुख दुःख आते हैं, परन्तु ज्ञानी जीव उनका ज्ञाता द्रष्टा रहता है। वह सब जान रहा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह भी एक परिणमन है। उपाधि उदयके निमित्त को पाकर आया है, वही उदय तो दूसरे क्षण नहीं रहता सो यह अभी निकल जायगा। इससे मुझ चिन्मात्र सहज परमात्माका कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह अन्तरात्मा सभी परिणमनोंका मात्र ज्ञाता रहता है। अन्तरात्माकी अन्तःप्रतीति सुदृढ़ है। मैं बाह्यपदार्थोंका कर्ता व स्वामी तो हूँ ही नहीं, यह तो अत्यन्त प्रकट बात है, किन्तु उपाधि सम्पर्कमें उत्पन्न हुए राग द्वेषादि विभावों का भी मैं कर्ता व स्वामी नहीं हूं। मैं तो उपयोग मात्र हूं और उसमें भी उपयोगके आधारभूत चेतनाशक्तिमात्र हूं। करनेकी तो कोई बात ही नहीं, होनेकी बातपर विचार करना है। मैं शुद्ध दृष्टिसे जानने देखनेका अधिकारी हूँ और जो ये राग द्वेषादि भाव होते हैं वहां मैंने तो अशुद्ध उपयोग करने रूप अज्ञान किया, यह भी पूर्वकालोंमें अशुद्ध दृष्टि करके जो अज्ञानकी सृष्टिकी थी उसका यह परिणाम है। ज्ञानी तो ज्ञानस्वभावकी पूजामें रहता है। अज्ञानीके ही ऐसी उपासना है कि मैंने कारखाना चलाया, संस्था चलाई आदि। ज्ञानी जीवकी प्रदेशभूमिका में कारणवश जो राग द्वेषकी तरङ्गें उठती हैं वहां भी अपनी गलती देखता है तो यह भाव होता है कि मैंने तो यहाँ इतना अज्ञान-भावमात्र किया। ज्ञाता द्रष्टा रहनेके अतिरिक्त जो भी भाव होते हैं वे सब अज्ञानभाव हैं। जो ज्ञानी भूतकालके वृत्तमें भी यह नहीं सोचता कि मैंने अमुक पदार्थको यों यों किया व वर्तमानके वृत्तको भी नहीं सोचता कि मैं इसको कर रहा हूँ वह क्या भविष्यके स्वप्न देखेगा अर्थात् सोचेगा क्या कि मैं इस पदार्थ को करूंगा या ऐसा इसे कर दूंगा, कभी नहीं। वह भविष्यकी कोई चिन्ता नहीं करता। वह भूतकालकी बातमें तो कुछ यह सोच भी लेता है कि मैंने इतना अज्ञानभाव किया, किन्तु भविष्यके सम्बन्धमें तो वह कर्तृत्वकी कुछ भी बात नहीं सोचता, भावोंके करनेका भी संकल्प उसके नहीं है।

अहा देखो यह ज्ञानी पुण्यपुरुष स्वच्छ ज्ञानतत्त्वकी उपासनामें लग रहा है। इसको यदि कोई विभाव धक्का देकर अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हो तो वहां ज्ञानीका यही उत्तर होता कि ऐ विभावो ! विदित होगया कि तुम आये हो, जावो चले जावो, अब मुझे फुरसत नहीं, निज अलौकिक अपूर्व काममें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगा हुआ हूँ। यह ज्ञानी उन विभाव नटोंकी ओर निरखता भी है तो इस तरह निरखता है जैसे कि वहां ज्ञाता द्रष्टा बना हुआ तमाशा देख रहा है। ज्ञानी कर्म व कर्मफलोंका कर्ता भोक्ता नहीं बनता। ऐसा ज्ञानी ज्ञानबलसे कर्मोंका बन्धन तोड़नेमें समर्थ है। भैया! कर्मोंकी परतन्त्रता ज्ञानबलसे ही मिट सकती है। बाह्यमें पूजा प्रतिष्ठा विधान उत्सव आदि सब कितने ही कर लो, ज्ञानकी प्राप्ति तो ज्ञान द्वारा ही होगी, कर्मबन्धन तो ज्ञानबलसे नष्ट होगा। अय प्यारे आत्मन्! जैसा तेरा सहज यथाजात स्वरूप है उसका भाव न आवेगा तब तक तेरा अपने आपका कल्याण होना कठिन है, कठिन ही क्या असंभव है। यह शरीर परिवार धन वैभव सब पर हैं, मान अपमान स्नेह द्वेष आदि विभाव भी, पर इनमें उपयोग फंसाना ही तेरा शत्रु है। इनको मत अपनाओ, इनसे उदास हो रहो। तेरा हित तेरा शरण निश्चयसे तो तेरा सहज परमात्मतत्त्व ही है। तथा व्यवहारमें देव शास्त्र गुरु जो उपदेश व अन्तः दर्शनोंसे शिक्षा दे रहे हैं—हित है। ज्ञानी पुरुष व्यवहारमें ज्ञानकी प्रतिमूर्तियों की उपासना करता है और अन्तरमें ज्ञानतत्त्वकी उपासना करता है।

किन्तु, अहो यह मूढ़ जन्तु संसारभावमें ही लगा हुआ है। देखो तो जो देव शास्त्र गुरु परम उपकारी हैं उनपर तो न दृष्टि जाती और न विनयभाव जगता है, उनकी आज्ञापालन देखनेका तो जिक्र ही न करो। वह तो चूं कि पर्यायमें रत है सो जिसे इष्ट समझा उसीके पीछे बरबाद हो रहा है, परिग्रह-संचयमें वक्र हो रहा है, इच्छा और महत्त्वाकांक्षामें ठेस लगते ही आग बबूला हो जाता है। यह तो बहुत ही दुःखी है। इस बहिरात्माको तो चारों ओरसे सर्व प्रदेशोंमें विकार, विभाव, संक्लेशका महान् संकट आया हुआ है, इसके लिये कोई दूसरा शरण भी नहीं है। इसकी तो संकटापन्न हरिणशिशु जैसी दशा है। एक बार राजा भोजकी सभामें राजा भोजने एक पंडितके बापको कहा कि "क यामः किं कुर्मः हरिणशिशुरेवं विलपति" इसकी पूर्ति करो। भैया! पंडितका बाप पंडित ही हो ऐसा कोई नियम है क्या? वह पंडितपिता देहाती व मूर्ख था। उससे और कुछ तो कहते न बना, पुत्र से यह कह बैठा—'पुरा रे बापा।' इन देहाती शब्दोंका अर्थ है कि रे बेटा! तू पूरा कर दे। इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घटनाके बाद उस पुत्र कविने अपने बापकी मूर्खता छिपाने के लिये इन्हीं देहाती शब्दोंसे शुरू करके छन्दकी पूर्ति कर दी। वह छन्द यह है—पुरा रेवापारे जिरिरति दुरारोहशिखरे, गिरौ सव्येऽसव्ये दवदहनज्वालाव्यतिकरः। धनुःपाणिः पश्चान्मृगयुशतकं धावति भृशं, क यामः किं कुर्मः हरिणशिशुरेवं विलपति। आगे रेवा नदी है, दोनों तरफ तीव्र जलते हुए बनाग्निमय पहाड़ हैं, पीछे सौ शिकारी धनुष हाथमें लिये हुए दौड़ रहे हैं, ऐसी अवस्थामें हिरणका बच्चा विलाप करता है कि "कहां जांय, क्या करें" ? यहां प्राणी यदि प्रमादमें रहे, बहिर्मुखी रहे, अपने आनन्दस्वरूपकी ओर उन्मुख न हुए तो बरबादी निश्चित ही है।

यहां ज्ञानी जीवका अन्तरङ्ग देखो—वह अपने ज्ञानमें ज्ञाता मात्र ही है, बाह्यमें कुछ भी गुजरो उसके कारण ज्ञानी अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता है। वह तो अन्तरमें सम्यग्ज्ञानके बलसे निराकुल रहता है। इसका कारण यह है कि ज्ञानीको किसी बाह्य वस्तुसे कोई शंका नहीं है और खुदके स्वरूपसे तो शंका ही क्या होती उससे तो आनन्द ही झरता है। भैया ! शंका क्लेश बड़ा क्लेश है, इतना क्लेश तो शंकावाली बात गुजर जानेका नहीं होता। जैसे किसीके घर कोई बीमार है, अधिक बीमार है तो उसके सम्बन्धमें यह शंका रहती है घर वालोंको कि ये बचेगा या नहीं बचेगा ? इस शंकामें वह अधिक विह्वल रहता है जिससे तीव्र आकुलित रहता है। यदि वह गुजर जाता है तो इसके बाद दुःख ऊपर तो आ जाता है किन्तु शंकाजन्य महती आकुलता उसके नहीं रहती तो शंका का क्लेश महाक्लेश हुआ ना। सम्यग्दृष्टि जीवके कोई शंका ही नही। वह तो निर्णय कर चुका कि जो मुझमें है वह मुझसे कभी जाता नहीं और जो अन्य है उसकी बात मुझमें आती नहीं; मैं मैं ही हूं, पर पर ही है। देखो शंकामें कितनी परेशानी थी उस कुटुम्बी को, डाक्टर आते थे उनसे अकेले में मना मना कर यथार्थ बात जाननेकी इच्छा प्रकट करता था, निरन्तर शल्य थी कि जियेगा या नहीं यह ? अब मरनेके बाद उस कुटुम्बी के उपयोगमें संशय तो नहीं रहा, अनिर्णय तो नही रहा। सो अब मरनेके बाद आंसू तो बहा रहा है वह, किन्तु अन्तरमें वह विह्वलता नहीं है क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तद्विषयक निर्णय हो चुका है उसके उपयोगमें। इसी प्रकार यह जीव जब तक अज्ञानी है इसको निरन्तर विह्वलता रहती है परिणतियोंके अनिर्णयके कारण और जब इसे निजके व परके स्वरूपका यथार्थ निर्णय हो जाता है तब उपाधि-जनित तीव्र उपद्रव भी हों, जिनसे रोना भी पड़ता हो तो भी उस ज्ञानीके अन्तरमें विह्वलता नहीं रहती क्योंकि उसको वस्तुस्वातन्त्र्य का पूर्ण निर्णय है। जब तक संशय की, स्नेह की, अज्ञानताकी कोटी चलती रहती है तब तक जीव को पग धरनेका, टिकानेका स्थान नहीं है, वह तो विकल्पोंमें ही मर लेता है।

जीवको जब यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति होती है तभी शान्ति मिलती। शान्ति भी क्या, परपरिणतियोंके अनिर्णयमें जो कल्पनायें होतीं, ज्ञान होनेपर वे कल्पनायें मिट जातीं, लो अशान्ति खतम। ज्ञानी जीव ज्ञानस्वभावमात्र अपने को निरखता हुआ कष्टोंके आनेपर कहता है—हे विषफलो! अर्थात् कर्मके उदयमें होने वाले दुःखरूपी कर्मफलो! तुम अब फल दिये बिना ही निकल जावो, मैं तो तुम्हें मात्र देख रहा हूं, जान रहा हूँ और फिर अपने काममें लगा हुआ हूँ, अपने स्वरूप प्रभुके दर्शनमें लगा हुआ हूं, अपनी प्रभुताके आनन्दके अनुभवमें जा रहा हूँ, भाई मुझे फुरसत नहीं है, तुममें कैसे उलझूं। भैया! यह भाव तो गृहस्थावस्थामें भी हो सकता है, सभी संज्ञी जीवों को उपलब्ध हो सकता है। बस जरूरत है ज्ञानकी, ज्ञानरूपी नेत्रोंकी, वस्तुके स्वरूपको समझनेकी। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें ही है। उसके गुण पर्याय उस ही के खुदके प्रदेशोंमें है। इसी कारण कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थका न अधिकारी है न कर्ता है। कोई जीव पागलकी भांति किसी भी अन्य चीजको अपनी समझ-ने लगे या अपने जुम्मे समझने लगे तो दुःख तो अपने आप ही होगा। भैया! एक धुनिया विदेशसे जहाजमें आ रहा था। जहाजमें मुसाफिर तो एक दो ही थे बाकी हजारों मन रुई उसमें लदी थी। सो रुई को देखकर धुनियांको विकल्प हो गया कि हाय रे हाय यह सारी रुई हमें धुनना पड़ेगी! इस विकल्पमें वह बीमार हो गया। घर आते आते तीव्र ज्वरमें व मनोरोगमें ग्रस्त होगया। डाक्टर आये, दवा हुई, मगर अच्छा न हुआ। एक विवेकी पहुँचा तो उसने पूछा कि कहांसे बीमार होकर आये? धुनियाने कहा—विदेशसे आ रहे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थे, रास्तेमें बीमार हो गये। किस सवारीसे आ रहे थे? जहाजसे। उसमें कितने लोग थे? लोग तो दो ही थे किन्तु उसमें हजारों मन रुई भरी थी। यह समाचार जानकर वह विवेकी सब समझ गया और बोला कि अरे! तुम उस जहाजमें आ रहे थे वह तो किनारे आनेके दो घटे बाद आगसे जल गया और रुई तो राख बनकर उड़ गई। यह बात सुनकर धुनिया बोला कि अहा सब रुई जल गई। धुनियाका चित्त बदला और चंगा हो गया वह। बात क्या थी? वह तो इस धुनमें बीमार था कि हाय रे हाय, यह सारी रुई हम ही को तो धुनना पड़ेगी। अब क्या हुआ? यह भाव आ गया कि रुई तो सब खतम हो चुकी, अब मेरे धुनने को जुम्मे नहीं रही।

भैया! अज्ञानमें यह जीव परका जुम्मा मानने लगता है और दुःखी होता है। इस ज्ञानीकी उदारताको तो देखो—इसके आत्मप्रदेशमें परिणम रहे राग द्वेष सुख दुःख आदि विभावोंको परका निमित्त पाकर हो जानेके हेतु परभाव-रूप होनेसे तिरस्कृत करता है, दूर करता है। अय विभावो! तुम रहनेके लिये तो आये नहीं हो, जानेके लिये आये हो। मैं सब तुम्हारी पोल समझता हूँ, आये हो तो आवो और अब जा रहे हो जावो, तुम सब मेरे भोगके बिना ही यों ही निकल जावो, मैं तो चैतन्यस्वभावमात्र इस अपने आपको चेत रहा हूं। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, अपने ही परिणमनस्वभावके कारण प्रत्येक द्रव्य स्वयं परिणम रहा है। मैं किसी का कुछ नहीं करता, कोई मेरा कुछ नहीं करता। अपने अपनेमें सब हैं, मैं तो मात्र ज्ञाता द्रष्टा हूँ, किसी पर का न मैं कर्ता हूँ, न भोक्ता हूं, न स्वामी हूँ, न अधिकारी हूँ और न जुम्मेवार हूं। मैं तो शान्त, निराकुल, चेतन हूँ। ये तो सब पुद्गलके ठाठ हैं, विषवृक्षके फल हैं।

अय विषवृक्षके फलो! तुम सब मेरे भोगके बिना ही निकल जावो, विगल जावो, गल जावो, सूक जावो; मैं तो चैतन्यात्मक अपने स्वरूपको ही चेतता हूँ अथवा हे विकारभावो! तुम्हें क्या गाली देवें, तुम तो परवश होकर आते हो, उपाधिकी आधीनता स्वीकार करके आते हो, आवो। मैं तो जब तक यथार्थ तत्त्व न समझ सका था, मैं तुम्हारी आधीनता स्वीकार करके परवश संकट सह रहा था। अब मैंने यथार्थ तत्त्व समझ लिया है। अहो, जब भी मैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भ्रम करके स्ववश संकट सह रहा था और अब तो भ्रमविनाश हुआ सो स्ववश ही हो गया हूँ, मैं तो अब मात्र तुम सबका ज्ञाता द्रष्टा हूँ, तुम्हें व तुम्हारी वृत्तिको मात्र देख रहा हूँ। तुम मुझे अब विचलित नहीं कर सकते अथवा मुझे तेरेको जानने देखनेकी भी फुरसत नहीं है। यहां तो मैं शुद्ध ज्ञानस्वभावकी पूजामें लगा हुआ हूं, अहो जो भगवान्का स्वरूप है, वही मेरा स्वरूप है। भगवान् अन्दर बाहर सर्वत्र एकसा है, मैं अन्दर भगवान् सा हूं, मेरी दृष्टि भी अन्दर ही है तो यहाँ मैं भी सर्वत्र एकसा हूं। हे चैतन्य महाप्रभो ! मैं तुम्हारे अवलम्बनको लिये तुम्हारे सहारे अपने निजमें बैठा हूँ, स्थिर हूँ, परभावोंका तो मैं मात्र ज्ञाता ही रहूँगा, भोक्ता तो मैं निज सहज चिद्विलासरूप आत्मानुभूतिका ही रहूँगा।

यह ज्ञानी महात्मा बाह्यमें किसी भी स्थितिमें हो, अन्दरमें तो वह ज्ञानस्वभावकी ही पूजा कर रहा है। संसारमें उत्कृष्ट तत्त्व क्या है तो उसका एक ही उत्तर है–सहज ज्ञान; वास्तविक शरण क्या है, तो उसका एक ही उत्तर है—सहज ज्ञान। सर्वत्र प्राणियोंमें अन्तर्दृष्टिसे दीख भी रहा है— सहज ज्ञान। सहजज्ञानका ही इसके अन्दर हैं, सहज ज्ञानपर ही यह न्यौछावर है। धन्य है, यह है ज्ञानीकी पूजा।

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

—:o * o:—

ज्ञानकी महिमा

अहो, विश्वमें यह सब कुछ उजेला ज्ञानका ही तो है। कल्पना करो कि यह चमकता व न चमकता सब कुछ भौतिक पदार्थ होता और एक ज्ञानवान् (चेतन) तत्त्व अथवा ज्ञान न होता तो इस सब उजेले का कुछ व्यवहार भी होता। इतना ही क्यों ? यदि ज्ञान, अर्थात् ज्ञानी तत्त्व न होता तो यह चमकता व न चमकता भौतिक तत्त्व भी कहाँसे होता ? आत्मा ही जब सूक्ष्म शरीर वर्गणावोंको अङ्गीकार करता तब इन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति व त्रसशरीरोंका निर्माण होता है। अहो, विश्वमें यह सब चमत्कार ज्ञानका ही तो है और देखो ये भीतर जो कल्पनायें चल रही हैं—राग द्वेष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिचय आदि चल रहे हैं वे सब कुछ भी इस ज्ञानके सहारे ही तो हैं। दुनियाँ में जो कुछ भी व्यवहार चल रहा है वह सब कुछ ज्ञानका ही तो कोई प्रसाद है। अब कुछ आगे बढ़कर देखो—जितना भी सुख, दुःख व आनन्द होता है वह सब ज्ञानकी परिस्थितिका अविनाभावी है। जिस ढंगका ज्ञान होता है उसी ढंगका आनन्दशक्तिका परिणमन होता है। जैसे यदि किसीका ऐसा ज्ञान बन गया कि मुझे इसमें अब इतनी धनहानि होगई है अथवा ये पुत्रादिक मेरी आज्ञासे बाहर हो गये हैं इत्यादि ढंगका ज्ञान बना कि लो दुःख होगया। जैसे यदि किसीका ऐसा ज्ञान बन गया कि मुझको इसमें इतना अर्थलाभ हो गया अथवा ये कुटुम्बी व मित्र आदि मेरेसे बहुत ही अनुराग रखते हैं इत्यादि ढंग का ज्ञान बना कि लो सुख हो गया और जब बाह्य सर्वकल्पनाजालोंको छोड़ कर ज्ञान ज्ञानस्वरूपको ही जानता है तो ऐसी ज्ञानस्थितिमें आनन्द हो जाता है। ये सब ज्ञानकी ही तो करामातें हैं।

व्यवहारविमुग्ध प्राणियोंको यह भ्रम हो गया है कि मुझे सुख महल, धन, परिवार आदिसे होता है और इन सब साधनोंके बिगड़ जानेसे दुःख होता है, यह उनकी कोरी मोहकल्पना है। देखो अन्यत्र रहने वाले किसी धनिकका कलकत्तेमें कारखाना है उसमें यदि पांच सात लाख रु० का लाभ भी होगया और उस धनिकके पास कोई सूचना नहीं गई, उसे इस सम्बन्धका कुछ भी ज्ञान नहीं है तो वह तो सुखी नहीं होता बल्कि पहिलेके टोटेकी खबर या झूटी ही टोटेकी खबर उसे मिले तो वह दुःखी होता है। धनसे सुख होता तो धन आते ही इसे भी सुखी हो जाना था। परन्तु देखो जैसी स्थिति ज्ञानकी बन रही है उसी प्रकारकी दुःख परिणति भी उसकी हो रही है तथा किसी धनिक के कारखानेमें ५—७ लाख रु० का नुकसान होगया है और उसके पास कोई खबर ही नहीं है तो वह तो अपने कामका अच्छा चलना ही कल्पनामें ले रहा है और इस ज्ञानकी परिस्थितिसे सुखी हो रहा है। इस कारण यही अपना निर्णय बनाना कि सुख और दुःख ज्ञानकी परिस्थितिसे हुआ करते हैं बाह्य पदार्थोंके कारण नहीं हुआ करते। एक तत्त्ववेत्ता महात्मा सकल संन्यास करके आत्मज्योतिके प्रकाशमें अपने ज्ञानको लिये हुए है तो उसके तो अनुपम आनन्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बर्त रहा है किन्तु बाह्य पदार्थ तो धागा तक भी उसके पास नहीं है। यह सब ज्ञान की ही तो महिमा है। ज्ञानोंमें शिरोमणि ज्ञान वस्तुविज्ञान है। वस्तुके यथार्थस्वरूपके ज्ञानसे ही यह आत्मा भेदविज्ञान कर सकता है और फिर भेदविज्ञान करके परपदार्थ व परभावोंकी पकड़ छोड़ देता है तथा निजस्वभाव को ही निजरूपसे अपने उपयोगमें लेता है। यह अलौकिक बड़प्पन स्वच्छज्ञान के प्रसादसे होता है। लौकिक बड़प्पन भी तो ज्ञानका कोई प्रसाद है। अहो ज्ञानदेवते! प्रसन्न होओ। जगत्में जो कुछ भी महिमा है वह सब तेरी महिमा है।

यह ज्ञानकी महिमा मोही जीवोंको नहीं सुहाती। उन बेचारोंको तो यह भी सुविदित नहीं है कि इन बाह्य पदार्थोंसे भिन्न यह मैं जीव कोई स्वतंत्र सत् पदार्थ हूं। यह तो है धनपरिवारप्रिय मोही जीवोंकी कथा। अब जरा उनके हृदयोंका पता करें जिन्हें न धन प्रिय है और न परिवार प्रिय है और प्रिय है अपना कल्याण व उद्धार और इसी हेतु जो धन जन सदन आदि परिग्रहका संन्यास करके बनमें निवास कर सत्य शरणकी खोजमें लगे हैं—इस ज्ञान महाप्रभुके विलासमें उनकी कैसी दृष्टियां (दर्शन) हुईं, इस सम्बन्धमें कुछ स्पष्ट जानकारीके लिये अपने उपयोगमें एक चित्रण लेकर देखो।

सोचो-किसी बनमें कल्याणार्थी संतोंका समूह प्रतिदिन सत्सङ्गमें ज्ञानोपदेशामृतका पान किया करता है। उस सत्सङ्गमें प्रमुख ज्ञानयोगी ऋषिका प्रमाणसे परिपूर्ण आत्मस्वरूपका वर्णन होता है। यह मैं क्या हूँ? ज्ञान व आनन्दका घन एक सत् हूँ। स्वभावदृष्टिसे मैं शक्तिरूप हूं। देखो यही मैं प्रतिसमय वर्तता रहता हूँ ना इसी कारण व्यक्तिरूप हूँ। यह स्वतःसिद्ध है अतः त्रैकालिक नित्य हूँ। प्रतिसमय इसका कोई न कोई परिणमन होता ही है सो पर्यायकी ओरसे देखो यह मैं अनित्य हूं, ज्ञानमात्र हूँ, प्रतिभासमात्र हूं, ऐसा प्रतिभासमात्र जहां न कोई संकल्प है और न विकल्प है, अत्यन्त सूक्ष्म हूँ, गुप्त हूं। इस प्रकारके और भी मर्मस्पर्शी तत्त्वकी बातका चिन्तवन करते करते किसी संन्यासीको न कुछ मालूम हुआ और उनकी यह दृष्टि बनी कि शून्य ही तत्त्व है। कुछ विचार बाद इसके ऊपर यह दृष्टि होती है कि सर्वथा शून्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो नहीं, किन्तु कुछ प्रतिभास तो अवश्य है। कुछ विचारवाद प्रतीत होता कि वह प्रतिभास न कुछ या छिछला जैसी उड़न्त चीज नहीं है, किन्तु एकत्वको लिये हुए है अर्थात् प्रतिभास तत्त्व है। फिर वितर्क हुआ कि यह प्रतिभास छिछला तो है नहीं, यह तो निबद्ध है, यही प्रतिभासैकत्व है। यह प्रतिभास अर्थग्रहणरूप भी है—ऐसा वितर्क होते ही। ज्ञानाद्वैत हुआ यह ज्ञान निराधार भाव नहीं है यह किसीके अधिष्ठातृत्वमें है, सो यह ब्रह्माद्वैत हुआ। मात्र यह शुद्ध ब्रह्म ही तो नहीं, यह विचित्र जगजाल भी तो नजर आ रहा है यही चित्राद्वैतकी झलक है। यह सब नाना रूप है, नाना है एकत्व अर्थात् अद्वैत तो जातितः है। यह चेतन अचेतन जातिके दो तत्त्वोंका समुदय ही तो है। बस, अब यहां लो, प्रकृतिपुरुषवाद आ गया। अब इस पर द्रव्य गुण क्रिया आदि का विश्लेषण किया जावे तो विविध धर्म नजर आने लगें। सो यहांसे विशेषवाद प्रकट हुआ है। यह विशेषवाद कालके विशेषसे भिन्न किया जाने लगा तो क्षणिकवाद प्रकट हुआ। इस तरह शून्यवादसे लेकर विशेषवाद तक जो जो धारणायें होती हैं वे सब ज्ञानके माहात्म्यको प्रकट करते हैं। ये धारणायें बुद्धिके विषय हैं वस्तुके धर्म हैं इन्हें सर्वथा असत्य तो कहा नहीं जाता, किन्तु वही कोई एक दृष्टिका ही एकान्त करके किसी एक विशेषता का ही एकान्त कर लिया जाता तब वह असत्य हो जाता है। इन सब असत्योंको भी सत्यकी कोटिमें ले जाने वाली कला स्याद्वाद है। स्याद्वादका प्रकाश ज्ञानका ही माहात्म्य है। ज्ञानकी कला अनुपम कला है। इसीके प्रसादसे शिवमार्ग मिलता है। नाना परिस्थितिमें पड़ा हुआ भी शुद्ध ज्ञानस्वरूपके ज्ञानके प्रसादसे क्लेशों का अनुभव न करके सहज आनन्दका अनुभव यह ज्ञानी कर लेता है।

लोकमें जो भी अद्भुतता है वह ज्ञानकी ही महिमा है। परतत्त्वमें भी जो इतना वैज्ञानिक विकास हुआ है; रेडिओ, तार, फोन, स्पीकर, बेतार, अणुशक्तिपरीक्षण, राकेट आदि जो वैज्ञानिक उत्थान हैं वे विज्ञानकी महिमाके ही तो फल हैं। उन सब ज्ञान कलावोंमें से जो अध्रुव कलायें हैं उनका उपयोग ज्ञानी को इष्ट नहीं। ज्ञानी ध्रुव ज्ञानस्वभावमय आत्मकलाको ही लक्ष्यमें लेता है। अध्रुव ज्ञानपरिणतियों या रागादिभावों या परपर्यायों व पर पदार्थों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में उपयोग लगानेमें न तो स्थिरता ही प्राप्त होती है और न शान्ति ही प्राप्त होती है। सहजज्ञानको उपयोगमें लेनेकी सहजज्ञानकला लोकमें सर्वोपरि क्या, सर्वस्व एकमात्र यही अनुपम कला है। एक दोहा लोकमें प्रसिद्ध है–कला बहत्तर पुरुषकी तामें दो सरदार। एक जीवकी जीविका दूजा जीव उद्धार॥ साहित्य में पुरुषकी कलायें बहत्तर कही गई है उनमें प्रधान कला दो हैं (१) आजीविका (२) जीवोद्धार। सो देखलो—ये दोनों भी तो कोई ज्ञानकी महिमा हैं। आजीविका का उपाय बनाना, प्रवर्तन करना वह सब ज्ञानपर ही तो निर्भर है। जैसा कुछ भी हो, जीवोद्धारकी बात तो सर्वोपरि है। जीवका उद्धार हुए बिना जीवका क्या होगा सो संसारमें कुछ कुछ तो देख ही लिया है। जीवके उद्धारका उपाय जीवके सहजस्वरूपका अवगम कर उसमें रम जाना है। यह कला ही सर्वोपरि कला है जिसके प्रसादसे ज्ञानका परमविकास प्रकट होता है, सर्वज्ञता प्रकट होती है। हम लोगोंका कर्तव्य यही सर्वोपरि है कि ज्ञानस्वरूप निज आत्मतत्त्वका ज्ञान करें अर्थात् ज्ञानके द्वारा ज्ञान ज्ञानको जानता रहे, इसे सहजकला व परमकला कहते हैं।

अहो ज्ञानदेवते ! तुम्हारा ही अवलम्बन सत्यशरण है। तुम्हारा ही दर्शन सत्य आनन्दका स्रोत है। तुम्हारी ही उन्मुखता होना सम्यक्त्व का उपाय व सम्यक्त्वका फल है। शिवपद तुम्हारे ही प्रसादके अनन्तर निकट होता जाता है, निर्वाण प्राप्त कर लिया जाता है। हे ज्ञानदेवते ! तुम सदा मेरे उपयोग आसनमें विराजे रहो। आनन्दका अविनाभाव ज्ञानके साथ है। शुद्ध ज्ञानके क्षणमें शुद्ध आनन्द वर्तता ही है। अतः आनन्दलाभकी दृष्टिसे भी ज्ञानकी सर्वोपरि महिमा है। ज्ञानमय इस आत्माका ज्ञानस्वरूप ही सर्वस्व है। इस मेरेका ज्ञानस्वरूपके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। भेदविवक्षावश कहे जाने वाले अस्तित्वादि सामान्य गुण व चारित्रादि विशेष गुण हैं वे ज्ञानकी ही विशेषतायें हैं अथवा ज्ञानस्वभावका वर्णन विवृत करनेके लिये विशेषणस्वरूप हैं। ऐसे इस ज्ञानस्वभावकी महिमा जानने वाले ज्ञानपरिणमनकी भी अनुपम महिमा है। हे ज्ञानानन्दमय आत्मन् ! तुम सदा ज्ञानपथगामी होओ। तेरा ही ध्यान बना रहना ही सत्य शरणकी स्थिति है। शुद्ध ज्ञानस्वरूपका ज्ञान होना

Version 1

ही शुद्ध आनन्दका हेतु है। ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ तत्त्व आनन्दका हेतु नहीं। शुद्ध ज्ञानके ज्ञानमें वीतरागताका स्वरूप है। यही वीतराग विज्ञान आनन्दका स्थान है। हे ज्ञानदेवते ! सदा इस उपयोगमें विराजमान होकर इस अपने आधारभूत आत्माकी रक्षा करो।

—: * :—

संक्षेप में प्रमुख सिद्धान्त

(१९६१ की वीर जयंती पर एक भाषण)

बन्धुवर !

संसार दुखोंसे परिपूर्ण है। धनवान् पुरुष तो तृष्णाभावसे व निर्धन धनके अभावसे दुखी हैं। सन्तान वाले सन्तानकी करतूत व उनके पालनकी व्यग्रतासे दुःखी हैं तो निःसन्तान सन्तानके अभावसे दुखी हैं। तन्दुरुस्त मनुष्य विषयोंकी आकुलतासे दुखी हैं तो रोगी मनुष्य तनकी वेदनासे दुखी हैं। विद्यावान् लोग प्रायः विद्याके मदसे होने वाली प्रवृत्तियोंसे दुखी हैं तो मूढ़ लोग अकिञ्चित्‌करना, महत्त्वाकांक्षा आदि परिणामोंसे दुखी हैं। जन्म, मरण, बुढ़ापा, क्षुधा, शंका, मोह, विरोध आदि दोषोंके संताप तो सभीके सिर पर मढ़ रहे हैं। पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, वृक्ष आदिका तो ठिकाना ही क्या ? मतलब यह है कि संसारके प्राणी नाना प्रकारके दुखोंसे दुखी हो रहे हैं। इनके दुःख बिल्कुल नष्ट हो जायें और अविनाशी आनंद इन्हें प्राप्त हो जाये इसका उपाय इस युगके मनुष्यों को श्री महावीर भगवान्‌ने दर्शाया है। यही सबसे बड़ी देन जनताको श्री महावीर भगवान्‌ने दी है। अतः हम सभी भगवान् महावीर प्रभुके बड़े आभारी हैं। आज उनके जन्म दिवस याने जयन्तीपर हम सब अपने श्रद्धाके सुमन चढ़ानेके लिये एकत्रित हुये हैं।

भगवान् महावीर स्वामीके उपदेशोंमें कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिनके अवधारणासे शान्तिका मार्ग मिला है तथा वे विलक्षण एवं अनुपम हैं। वे ये हैं— वस्तु स्वातन्त्र्य, अनेकान्त, स्याद्वाद, अहिंसा, अपरिग्रह, सम्यक्त्व, समाधि। यों तो इनके प्रसंगोंमें सिद्धान्त अनेकों हैं परन्तु इन सिद्धान्तोंके बारेमें प्रकाश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

डालना है। ये सिद्धान्त महावीर स्वामीने बनाये नहीं हैं किन्तु जैसा वस्तुका स्वरूप है उसको दर्शाया है। वस्तुस्वरूपका यह सब दिग्दर्शन केवल महावीर स्वामीने ही नहीं कराया किन्तु इनसे भी बहुत पहले श्री ऋषभदेव आदि तेईस तीर्थङ्करोने भी ऐसा ही वस्तुस्वरूप दर्शाया है।

—: ❋ :—

वस्तु स्वातन्त्र्य

यह लोक अनेक वस्तुओंका समूह है। एक वस्तु उतनी है जितनी कि वह अखण्ड है याने कभी जिसका खण्ड नहीं हो सकता। इस तरह अनंत जीव अनंतानंत परमाणु हैं—१ धर्मद्रव्य, १ अधर्मद्रव्य, १ आकाशद्रव्य, असंख्यात कालाणु हैं।

प्रत्येक वस्तु स्वयं सत् है व स्वयं परिणमनशील है। इस लिये किसी भी वस्तुके परिणमनको कोई अन्यद्रव्य नहीं कर सकता है। यह बात अवश्य है कि जीव या परमाणु जब अपने स्वभावके प्रतिकूल परिणमते हैं तो योग्य अन्य वस्तुको निमित्त पाकर ही प्रतिकूल परिणमते हैं। परन्तु परिणमते हैं अपनी अपनी शक्ति व व्यक्तिसे। इस तरह देखो—समस्त पदार्थ अत्यन्त स्वतन्त्र हैं। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थकी कृपासे नहीं टिका हुआ है। तब किसी पदार्थका अन्य कोई स्वामी नहीं है। प्रत्येक वस्तु स्वयं खुदका स्वामी है। खुद ही सब अपने अपने स्वरूपके स्वामी हैं। इस तत्त्वज्ञानके प्रतापसे तत्त्व-ज्ञानीके किसी भी पदार्थमें मोह नहीं रहता। मोह ही खुद दुःखकी खान है। वस्तुस्वातन्त्र्यकी श्रद्धासे सारे संसारके क्लेश नष्ट हो जाते हैं।

—: ❋ :—

अनेकान्त

प्रत्येक वस्तु अनेकधर्मात्मक है। जैसे कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, श्रद्धा स्वरूप है, चारित्र स्वरूप है, आनंद स्वरूप है, चारित्र स्वरूप है, आनंद स्वरूप है, नित्य है, अनित्य है, एक है, अनेक है, अपने स्वरूपसे सत् है, परके स्वरूप से असत् है इत्यादि। इन सब अनेक धर्मोंके परिज्ञान करने से आत्मा नामक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुका सम्यक् परिज्ञान होता है। फिर वस्तुके किसी भी एक धर्मका पक्ष न होनेके कारण ज्ञानीके सहज ही कोई ऐसा प्रकाश प्रगट होता है कि मात्र अखण्ड निर्विकल्प आत्मतत्त्वका अनुभव होता है। उस समय अनेकान्त इस व्याख्यामें परिणत हो जाता है कि 'न एकः अन्तः विद्यते यत्र स अनेकान्तः।' अर्थात् जहां एक भी अन्त नहीं है वह अनेकान्त है। निर्विकल्प सत्य आनंदकी स्थितियोंमें ले जानेका श्रेय अनेकान्तात्मक वस्तुकी श्रद्धाको है। इस अनेकान्त सिद्धान्तकी श्रद्धासे संसारके सारे क्लेश तो समाप्त हो ही जाते हैं। लोकमें भी विरोध कलह आदि सब अवगुण भी दूर हो जाते हैं।

—: ※ :—

स्याद्वाद

अनेक धर्मात्मक वस्तुको जाननेकी पद्धतिको स्याद्वाद कहते हैं। स्याद्वादके दूसरे नाम दृष्टिवाद व अपेक्षावाद भी हैं। वस्तुमें अमुक धर्म किस अपेक्षासे हैं—इस प्रकार अपेक्षाको बताना सो स्याद्वाद है। जैसे आत्मा ज्ञानशक्तिकी अपेक्षा से ज्ञानस्वरूप श्रद्धाशक्ति की अपेक्षासे श्रद्धास्वरूप है, चारित्रशक्ति की अपेक्षा से चारित्रस्वरूप है, आनंद शक्तिकी अपेक्षासे आनंदस्वरूप है। द्रव्य दृष्टिसे नित्य है। परिणामदृष्टिसे अनित्य है। लक्षणदृष्टिसे एक है। गुणप्रायः दृष्टि से अनेक है। अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत् है। परके स्वरूपकी अपेक्षासे असत् है आदि। स्याद्वाद संशय उत्पन्न नहीं करता, किन्तु निश्चय करता है कि अमुक की अपेक्षासे ऐसा ही है। स्याद्वाद बिना न तो कुछ निर्णय हो सकता है, न कोई व्यवहार ही चल सकता है। अमुकका पुत्र है, अमुकका पिता है इत्यादि व्यवहार चलते हैं जिस स्याद्वाद द्वारा उस स्याद्वाद द्वारा ही वस्तुओंका निर्णय होता है। स्याद्वादके आश्रयसे ही हम वस्तुका सम्यक् निर्णय करते हैं और सम्यक् निर्णयसे ज्ञानी भेदभाव नष्ट करके शाश्वत आनन्दका उपाय कर लेते हैं।

—: ※ :—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अहिंसा

अपने प्रभुकी प्रभुताके विकासका घात करना सो हिंसा है और प्रभुताके विकासका घात न करना सो अहिंसा है। ज्ञान और आनन्दके पूर्ण शुद्धविकास को प्रभुता कहते हैं। इस प्रभुताका घात राग द्वेष व मोहसे होता है। सो रागादिक भाव होनेका नाम हिंसा है और रागादिक भाव न होनेका नाम अहिंसा है। अन्य जीवोंका घात करना व उनका दिल दुखाना रागादि भाव के बिना नहीं होते और उस कुकृत्यके आश्रय रागादि भाव होते हैं। इस कारण जीवघात भी हिंसा है। हिंसा अधर्म है और अहिंसा धर्म है। इस अहिंसा का पालन जैसे जैसे उत्कृष्ट होता जाता है वैसे वैसे प्रभुताका विकास उत्कृष्ट होता जाता है। अहिंसाकी पूर्णतामें प्रभुताके विकासकी पूर्णता है। अहिंसा धर्म के प्रसादसे आत्मा सर्वज्ञ व अनन्त आनन्दमय हो जाता है।

—:०:✽:०:—

अपरिग्रह

अपरिग्रह भाव अहिंसाका साधक भाव है। मोह, माया, क्रोध, मान, काम, लोभ रूप अन्तरंग परिग्रह न होना सो अपरिग्रह है। धन, धान्य, वस्त्र आदिक किसी भी प्रकारका परिग्रहका न होना सो अन्तरंग परिग्रहका साधक है। फलतः अन्तरंग परिग्रह व बहिरंग परिग्रह—किसी भी प्रकार का परिग्रह न होना सो अपरिग्रह है। अपरिग्रहके कारण आत्मा सत्य शान्ति का पात्र होता है। इतना ही नहीं अपरिग्रहसे जनतामें सुव्यवस्था और शान्ति होती है।

—:✽:—

सम्यक्त्व

जो पदार्थ जिस प्रकार है। उन्हें उसही प्रकारसे प्रतीत करके आत्मस्वभाव में रुचि करना सो सम्यक्त्व है। प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी सत्ताको लिये हुये स्वतन्त्र है। मेरा किसी भी अन्य पदार्थसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं ज्ञानानंद-मय हूं इत्यादि वस्तुस्वरूपकी प्रतीतिसे आत्मस्वभाव की उन्मुखता होना सो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व ही महान् वैभव है। जिसके प्रतापसे संसारके सब बन्धन समाप्त हो जाते हैं। सम्यक्त्वके बिना मोक्षका उपाय नहीं हो सकता।

—: ❀ :—

समाधि

किसी पदार्थमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि न करके निर्विकल्प चैतन्यस्वभावमें स्थिर हो जाने को समाधि कहते हैं। इस समाधिबलसे आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा हो जाता है।

भगवान् महावीर स्वामीकी ऐसी ही अनेक तत्त्वपूर्ण दिव्य उपदेशों से जो ज्ञान प्रवाह चला उससे अनेक भव्य आत्माओंने निर्वाण पाया, शान्ति पाई, सम्यक्त्व पाया। भगवान् महावीर स्वामीका अवतार आजसे कुछ अधिक ढाई हजार वर्ष पहले हुआ था। भगवान् महावीर की चर्यासे ब्रह्मचर्य, अडिग तपस्या, धीरता, परम वैराग्य आदि अनेक शिक्षायें प्राप्त होती हैं। ऐसे परम गुरु भगवान् श्री महावीर स्वामीके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि समर्पण करता हूँ।

—मनोहर 'वर्णी' सहजानंद

Report any errors at vikasnd@gmail.com